खिल रहा है। उसी प्रकार आप भी सब पर कृपा दृष्टि कर रहे हैं। उसे जो पाते हैं वही अपने को धन्य समझते हैं।

विक्रम-ठहरो, ठहरो, बस बहुत हुआ। मैं जितनी कृपा-दृष्टि करता हूँ उससे कहीं अधिक स्तुति-वृष्टि सभासद गण करते हैं। अच्छा अब तो जितनी बातें तुमलोगों ने मुझे सुनाने के लिये गढ़ी थीं वह सब कह न चुके। अब जाओ।

(सभासदों का प्रस्थान)

(सुमित्रा का प्रवेश)

कहाँ जाती हो रानी! एक बार मेरी ओर देखो। मैं इस पृथ्वी का राजा हूँ। केवल तुम्हीं मुझे दीन समझती हो। मेरा ऐश्वर्य देश देशान्तरों में फैला है। केवल तुम्हारे ही निकट मेरी वासना क्षुधार्त्त-भिक्षुक की तरह है। क्या इसी से राज-राजेश्वरी घृणा और घमण्ड से बार बार मुझसे दूर चली जाती है!

सुमित्रा—महाराज! आपके जिस प्रेम की चाहना समस्त पृथ्वी कर रही है, मैं अकेली उस प्रेम के योग्य कदापि नहीं हूँ।

विक्रम-मैं अयोग्य हूँ! मैं दीन कापुरुष हूँ! मैं कर्त्तव्य-विमुख अन्तःपुर में ही रहने वाला हूँ! परन्तु महारानी, तनिक सोच-कर देखो, क्या मेरा ऐसा ही स्वभाव था? क्या मैं क्षुद्र हूँ और तुम महान् हो? नहीं, नहीं, मैं अपनी शक्ति और योग्यता को जानता हूँ। मेरे इस हृदय में अजेय शक्ति विद्यमान् है, परन्तु मैंने उसे प्रेम के रूप में तुम्हें दे दिया है। वज्र की अग्नि को विद्युत-रत्न-माला बनाकर मैंने तुम्हारे गले में पहिरा दिया है।

सुमित्रा—घृणा करो महाराज, मुझे घृणा करो, मेरे लिए वह भी अच्छा है। यदि मुझे सदा के लिये भूल जाओ, तो उसे भी

मैं सह लूंगी, परन्तु इस तुच्छ नारी के लिये आप अपना समस्त पौरुष का विसर्जन न कर डालिए ।

विक्रम—हा ! मेरे असीम प्रेम का इतना अनादर ! क्या तुम इस प्रेम को नहीं चाहती ? क्या विना चाहे ही मेरे इस प्रेम को तुम डाकुओं की तरह छीन नहीं रही हो ? उपेक्षा की छूरी से मेरे मर्म स्थानों को काटकर उसमें से रक्तसिक्त प्रेम निकालकर उसे धूल में फेंक देती हो । अय निर्मोही निष्ठुर ! पाषाण-प्रतिमा की तरह तुम्हारा मैं जितना ही गाढ़ आलिंगन करता हूँ उतनी ही मेरे हृदय में चोट लगती है ।

सुमित्रा—यह दासी आपके चरणों में पड़ी है, आप जो चाहें सो करें । नाथ, आज इतना तिरस्कार क्यों कर रहे हैं ? इतना कठोर वचन क्यों कह रहे हैं ? न जाने मेरे कितने अपराधों को आपने क्षमा किया है, तब आज विना अपराध मेरे प्रति इतना क्रोध क्यों कर रहे हैं ?

विक्रम—प्रिये ! उठो, उठो, अपने स्निग्ध आलिंगन से इस तप्त हृदय की ज्वाला बुझा दो । तुम्हारे इन आँसुओं में कैसा अमृत है, उनमें कितनी क्षमता है । और कितना प्रेम है । तुम्हारे कोमल हृदय में तीखी बातों के लगने से प्रेम की स्निग्धधारा वैसे ही निकल रही है जैसे अर्जुन के वाण के लगने से पृथ्वी से पाताल-गंगा निकली थी ।

(नेपथ्य में)—महारानी !

सुमित्रा—(आँसू पोछकर) देवदत्त ! क्या समाचार है ?

(देवदत्त का प्रवेश)

देव—इस राज्य के परदेशी सरदारों ने निमन्त्रण का अनादर कर दिया है, और वे विद्रोह करने के लिये तयार हो गये हैं ।

सुमित्रा—महाराज ! आपने सुना ?

विक्रम—देवदत्त! अन्तःपुर मंत्रणा-गृह नहीं है।

देव—महाराज, मंत्रणागृह भी अन्तःपुर नहीं है, यदि वह अन्तःपुर होता तो वहाँ महाराज का दर्शन अवश्य मिलता।

सुमित्रा—ये ढीठ कुत्ते राज्यका जूठन खा खाकर सिर चढ़ गये हैं, इसीसे आज राजा के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये तुले हैं। ओह! यह कैसा अहंकार है! महाराज, अब अधिक सोचने का समय नहीं है। इसमें सोचने की बात ही कौनसी है? सेना सहित जाकर इन खून के प्यासे कीड़ों को अपने चरणों से कुचल डालिये।

विक्रम—परन्तु सेनापति, शत्रुओं की ओर मिला है।

सुमित्रा—आप स्वयं जाइये।

विक्रम—मैं क्या तुम्हारा बलाय हूँ, तुम्हारा कुग्रह हूँ या हाथों में गड़ा हुआ कांटा हूँ कि मुझे तुम दूर करना चाहती हो? महारानी! मैं यहाँ से एक पग भी नहीं हिलूंगा। मैं सन्धि का प्रस्ताव भेजूँगा। किसने इन उपद्रवों को खड़ा कर दिया? ब्राह्मण और रमणी ने मिलकर बिल में सोते हुए सर्प को जगा दिया। यह कैसा खेल है! जो अपनी स्वयं रक्षा नहीं कर सकते, वह विना कुछ सोचे विचारे दूसरों को विपत्ति में डाल देते हैं।

सुमित्रा—धिक्कार है इस अभागे राज्यको, धिक्कार है इन अभागी प्रजाओं को, और धिक्कार है इस राज्य की रानी मुझको।

(सुमित्रा का प्रस्थान)

विक्रम—देवदत्त, मित्रता का क्या यही पुरस्कार है? मैं वृथा आशा कर रहा हूँ। राजा के भाग्य में विधाता ने प्रणय नहीं लिखा है। जैसे छाया-हीन पर्वत अकेला महाशून्य में

खड़ा रहता है; उस पर आँधी आक्रमण करती है, बिजली उसे वेधती है सूर्य्य उसकी ओर लाल आँखों से देखता है, पृथ्वी उसके पैरों को पकड़े रहती है, परन्तु वहाँ प्रेम कहाँ? उसी प्रकार राजा की महिमा भी नीरस और प्रेमहीन है। परन्तु राजा का हृदय भी दूसरे हृदय के लिये व्याकुल होकर रोता है। हा सखे! मानव-जीवन में राजत्व की नकल करना विडम्बना मात्र है। यदि मेरा दम्भमय उच्च सिंहासन चूर्ण होकर भूमि के बराबर हो जाय, तो मैं फिर तुम लोगों को अपने हृदय के सन्निकट पा सकूं। बाल्य-सखा! एकबार तुम भूल जाओ कि मैं राजा हू और मित्र के हृदय की व्यथा, बाल्य सुहृद् के भाव से ही अनुभव करो।

देव—सखा, मेरे इस हृदय को तुम अपना ही समझो। केवल प्रेम ही नहीं, तुम्हारी अप्रसन्नता भी मैं सुख से सहूँगा। जैसे अगाध समुद्र अपना वक्षस्थल पसारकर आकाश के वज्र को सह लेता है, उसी प्रकार से तुम्हारी क्रोधाग्नि को भी मैं हृदय से ग्रहण करूँगा।

विक्रम—देवदत्त! सुखके घोंसले में विरह की आग क्यों लगाते हो? सुख-स्वर्गमें दुःख और हाहाकार को क्यों ला रहे हो?

देव—सखा! घर में आग लग गई है, मैंने केवल उसका समाचार सुनाकर तुम्हें सुख की नींद से जगा दिया है।

विक्रम—इस जगाने से तो उस सुख-स्वप्न में मरना ही अच्छा था।

देव—महाराज यह आप क्या कह रहे हैं। इस विशाल राज्य के ध्वंस की अपेक्षा क्या तुच्छ स्वप्न-सुख आपको अधिक प्रिय है?

विक्रम—जो योगी योगासन में लीन है उसके निकट विश्व का प्रलय कहाँ है? यह संसार स्वप्न है। अर्द्ध शताब्दी के उपरान्त आजका सुख-दुःख किसे याद रहेगा? जाओ, जाओ देवदत्त! जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जाओ। अपने हृदय को अपने ही हृदय से ढाढ़स मिलती है! देखूँ, घृणा और क्षोभ से रानी कहाँ चली गयीं?

(प्रस्थान)

तृतीय दृश्य

देवीका मन्दिर

पुरुषवेशमें रानी सुमित्रा और बाहर अनुचर

सुमित्रा—जग-जननी. माता! इस दुर्बल-हृदय-तनया को क्षमा करो। आज सब पूजा व्यर्थ हुई, केवल वही सुन्दर मुख, वही प्रेम पूर्ण दोनों आँखें, वही शय्या पर अकेले सोये हुये महाराज, याद आ रहे हैं। हाय मा! नारी-हृदय क्या इतना कठोर है? माता, दक्षयज्ञ में जब तू गई थी, पग पग पर तेरा हृदय अपने ही पैरों को पकड़कर व्याकुल होकर क्या तुझे पतिगृह की ओर लौट चलने के लिये नहीं कह रहा था? परन्तु उस कैलाश की ओर तेरा वह चरण-कमल नहीं लौटा! माता! उस दिन की बात याद करके देख! जननी, मैं रमणी-हृदय की बलि देने आई हूँ—रमणीका प्रेम-टूटे हुए कमल की तरह तेरे चरणों में चढ़ाने आई हूँ। माँ तुम भी स्त्री हो, इस कारण स्त्रियों के हृदय को तुम जानती हो, जननी मुझे बलदो। रह रहकर राजगृह से सुनाई पड़ता है, लौट आओ रानी,

लौट आओ! प्रेमपूर्ण चिरपरिचित वही कण्ठ-स्वर सुनाई दे रहा है। मा, खड्ग लेकर मेरी राह रोक कर तुम खड़ी हो जाओ, कहो "तुम जाओ" राजधर्म जग उठे, राजा का यश उज्ज्वल हो, प्रजा सुखी हो, राज्य का मंगल हो, अत्याचार दूर हो, राज की यशोरश्मि से कलंक-कालिमा मिट जाये। तुम नारी हो, धराप्रान्त पर जहाँ कहीं स्थान पाओ, अकेली बैठकर अपने दुःख से आप ही आँसू बहाओ! पिता का सत्य-पालन करने के लिये रामचन्द्र वन गये थे, पति का सत्य-पालन करने के लिये मैं भी जाऊँगी। जिस सत्य की डोर में महाराज राज-लक्ष्मी के निकट बंधे हैं, उसे मैं इस सामान्य नारी के लिये व्यर्थ न होने दूँगी।

(बाहर एक पुरुष और एक स्त्री का आगमन)

अनुचर—कौन हो? तुम यहीं खड़े रहो।

पुरुष—क्यों भाई, क्या यहाँ भी हमें स्थान न मिलेगा?

स्त्री—क्या यहाँ भी रोक टोक है?

(सुमित्रा का मदिन्र के बाहर आना)

सुमित्रा—तुम कौन हो जी?

पुरुष—मिहिरगुप्त ने मेरे लड़के को कैद करके मुझे निकाल दिया है। मेरा इस समय न कहीं ठौर है न ठिकाना। मरने के लिये भी कहीं स्थान नहीं है। इसी से हम मन्दिर में आये हैं, देवी के सामने धरना देंगे। देखें, वह हम लोगों की क्या गति करती हैं?

स्त्री—पर क्योंजी! तुम लोगों ने यहाँ भी रोक-टोक जारी रखा है? राजा का दरवाज़ा तो बन्द ही है, देवी जी का भी द्वार रोककर खड़े हो?

सुमित्रा—नहीं माता, तुम लोग आओ। यहाँ तुम्हें कोई

भय नहीं है। तुम्हारे ऊपर किसने अत्याचार किया है ?

पुरुष—उसी जयसेन ने। हम राजा के यहाँ अपना दुखड़ा सुनाने के लिये गये थे, पर राजा का दर्शन नहीं मिला। लौटे तो देखा हमारा घर-द्वार जला दिया गया है। और हमारे लड़के को कैद कर रखा है।

सुमित्रा—(स्त्रीसे) क्यों माता तुमने रानी से जाकर यह सब क्यों नहीं कहा ?

स्त्री—अजी ! रानी ही ने तो राजा पर जादू कर दिया है। हम लोगों के राजा तो अच्छे हैं उनका दोष नहीं है, वह परदेशी रानी जब से आई है उसने तब से अपने नैहर के लोगों को राज्य में भर दिया है और प्रजाओं का खून चूस रही है।

पुरुष—चुपरह, भला तू रानी के बारे में क्या जानती है ? भला जिस बात को जानती नहीं, उसे मुँह से क्यों निकालती है ?

स्त्री—जानती हूँ, मैं जानती हूँ वह रानी ही तो बैठी बैठी राजा से हमलोगों की बुराई किया करती है।

सुमित्रा—ठीक कहती हो माता ! वह रानी ही सब अनर्थों की जड़ है। पर वह अब बहुत दिनों तक वहाँ न रहेगी। उसके पाप का घड़ा अब भर गया है। यह लो अपनी शक्ति के अनुसार मैं तुम को कुछ देता हूँ—पर तुम्हारा सब दुःख दूर नहीं कर सकता।

पुरुष—अहा ! तुम तो कोई राजकुमार जान पड़ते हो। जय हो !

सुमित्रा—बस अब देर नहीं, अभी जाऊँगी।

(प्रस्थान)

(त्रिवेदी का प्रवेश)

त्रिवेदी—श्रीहरि ! मैंने यह क्या देखा ! पुरुष वेश धारण करके रानी सुमित्रा घोड़े पर चढ़ी चली जाती हैं। मन्दिर में देवी की पूजा करने के बहाने आकर भागी जाती हैं। मुझे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और सोचा ब्राह्मण बड़ा सरल हृदय है। जैसे सिर में इसके एक बाल भी नहीं दिखाई पड़ता वैसे ही इसके हृदय में भी बुद्धि का लेश नहीं है। इसलिये इस से एक काम करा लूँ। इसके मुख से राजा के निकट थोड़ी सी मीठी-मीठी बातें भेज दूँ। भाई, तुमलोग बने रहो ! जब तुम लोगों को कुछ काम हो इस बूढ़े त्रिवेदी को बुलाना और दान-दक्षिणा के समय देवदत्त तो हैं ही। दयामय ! हाँ मैं कहूँगा, खूब मीठी-मीठी बातें बनाकर कहूँगा। मेरे मुँह से मीठी बातें और भी मीठी हो जाती हैं। मधुसूदन ! महाराज मेरी बातें सुनकर कैसे खुशी होंगे ! बातों को जितनी ही बड़ी बनाकर कहूँगा उसे सुनने के लिये राजाका आग्रह उतना ही बढ़ता जायगा। मैं देखता हूँ कि मेरे मुँह से बड़ी बातें बड़ी अच्छी जान पड़ती हैं, उसे सुनने से लोगों को बड़ा आनन्द होता है। लोग कहते हैं ब्राह्मण सरल है। पतितपावन ! इस बार कितना आनन्द होगा, इसे मैं अभी कह नहीं सकता ! परन्तु शब्द-शास्त्रको एक बार उथल-पुथल कर डालूँगा। अहो ! आज कैसा कुसमय है। आज दिन भर देवपूजा मैं नहीं कर सका। इस समय कुछ पूजा पाठ में मन लगाऊँ। दीनबन्धु ! भक्त-वत्सल !

(प्रस्थान)

चतुर्थ दृश्य

प्रासाद

विक्रमदेव, मंत्री और देवदत्त

विक्रम—चली गई! राज्य छोड़ कर चली गई! इस राज्य में जितनी सेना, जितने दुर्ग, जितने कारागार, जितने लौह-शृंखल हैं, क्या ये सब मिलकर भी एक अबला के हृदय को बाँध कर नहीं रख सकते? बस यही राजा और उसकी महिमा है? यह कैसे आश्चर्य की बात है कि इतना प्रताप, इतनी सेना, इतना द्रव्य, सोने के खाली पींजड़े की भाँति पड़ा रहे और उसमें से एक छोटी सी चिड़िया उड़ जाय!

मंत्री—हाय! हाय! महाराज! बाँध टूटे हुए जल-श्रोत की तरह चारों ओर से लोक-निन्दा फैल रही है।

विक्रम—चुप रहो मंत्री। लोक-निन्दा बार-बार क्यों कहते हो? निन्दा के बोझ से आलसी लोगों की जीभ कट कर क्यों नहीं गिर पड़ती? सूर्य के अस्त हो जाने पर यदि कीचड़ के गड्ढों से खराब भाप उठे तो उससे कुछ मेरा अन्धेरा बढ़ नहीं जायगा। वृथा लोक-निन्दा, लोक-निन्दा न करो।

देव—मंत्री! तेज से परिपूर्ण सूर्य की ओर भला कौन देख सकता है? इसी से जब ग्रहण लगता है, तब भूमण्डल के सभी लोग अपने दीन नेत्रों से उस दुर्दिन के दिन-नायक को देखने के लिये उत्सुक हो उठते हैं। अपने ही हाथों से कारिख पोते हुए शीशे के टुकड़े से आकाश के प्रकाश को भी काला देखते हैं। महारानी, माता जननी! क्या तुम्हारे अदृष्ट में यही था।

तुम्हारे शुभ्र यश में आज ग्रहण लगा है । हा, आज कैसा दुर्दिन है ? जननी, तो भी तुम तेजस्विनी सती हो । और ये दुष्ट निन्दुक नीच भिखारी हैं ।

विक्रम—त्रिवेदी कहाँ गया ? मंत्री उसको बुलाओ । उसकी सब बातें मैं नहीं सुन सका । उस समय मेरा ध्यान दूसरी ओर था ।

मंत्री—जाता हूँ, उसे बुला लाता हूँ ।

(मंत्री का प्रस्थान)

विक्रम—अब भी समय है, अब भी सुधि मिलने से लौटा सकता हू । पर फिर सुधि ! क्या इसी प्रकार मेरा जीवन बीतेगा ? वह भागती फिरेगी और मैं उसके पीछे-पीछे दौड़ा करूँगा ? प्रेम का शृंखल हाथों में लिये राज और राजकाज सब छोड़कर क्या सदा मैं रमणी के भागते हुए हृदय की ही खोज में फिरा करूँगा ? भागो, भागो; हे नारी, गृहहीन, प्रेमहीन, विश्रामहीन, खुली पृथ्वीमें केवल अपनी ही छाया को साथ लिये रात दिन भागती रहो ।

(त्रिवेदी का प्रवेश)

विक्रम—चले जाओ, दूर हो, तुम्हें किसने बुलाया है ? ढीठ ब्राह्मण ! मूर्ख ! बार बार उसकी बात कौन सुनना चाहता है ?

त्रिवेदी—हे मधुसूदन (जाना चाहता है)

विक्रम—सुनो, सुनो, दो चार बातें म पूछना चाहता हूँ । बताओ रानी की आँखों में आँसू थे ?

त्रिवेदी—महाराज चिन्ता न कीजिये । मैंने आँखों में आँसू नहीं देखे ।

विक्रम—झूठ ही बनाकर कहो ! अति तुच्छ करुणा से भरा हुआ दो शब्द झूठ ही कह दो ! हे ब्राह्मण, तुम वृद्ध हो, आँखों से तुम्हें दिखाई कम पड़ता है, फिर भी तुमने कैसे देख-लिया कि रानी के आँखों में आँसू नहीं थे? अधिक नहीं, केवल एक बूँद आँसू ! नहीं तो आँसुओं से भरी हुई आँखें ही, कम्पित कातर कण्ठ से आँसुओं से रुँधी हुई बातें ही सही, कुछ भी तो बताओ ! इतना भी नहीं ! सच कहो, झूठ कहो। नहीं नहीं, कुछ न कहो, कुछ न कहो ! चले आओ।

त्रिवेदी—श्रीहरि ! मधुसूदन तुम्हीं सत्य हो !

(त्रिवेदी का प्रस्थान)

विक्रम-हे अन्तर्यामी प्रभो ! तुम जानते हो उससे प्रेम करना ही मेरे जीवन का एक मात्र अपराध है। पुण्य गया, स्वर्ग गया, राज्य जा रहा है और अन्त में वह भी चली गयी ! तब हे प्रभो ! लौटा दो, मेरा वह क्षात्र-धर्म्म, राजधर्म्म मुझे लौटा दो, मेरे पराक्रमी हृदय को इस संसार-रूपी रंगभूमि में मुक्त कर दो ! बताओ प्रभो, कर्मक्षेत्र कहाँ है ? कहाँ है जनस्रोत ? कहाँ है जीवन-मरन ? कहाँ है मनुष्यों का अविश्राम सुख-दुःख सम्पत्ति-विपत्ति के तरंगों का उच्छ्वास-

(मंत्री का प्रवेश)

मंत्री—महाराज ! घुड़सवारों को मैंने चारो ओर महारानी को खोजने के लिये भेजा है।

विक्रम—लौटा लो, लौटा लो मंत्री ! मेरा स्वप्न टूट गया। घुड़सवार भला उसको कहाँ खोज सकेंगे ? सेना तैयार करो, मैं संग्राम में जाकर विद्रोहियों का नाश करूँगा।

मंत्री—जो आज्ञा, महाराज !

(प्रस्थान)

विक्रम—देवदत्त उदास क्यों हो ? तुम्हारे आँखों में आँसू क्यों भरे हैं। तुच्छ सान्त्वना की बात न कहो। मुझे छोड़कर चोर चला गया है, मैं अपने आप को पा गया हूँ। सखा, आज आनन्द का दिन है। आओ सखे, मुझे भेंटलो।

(भेंटकर)

सखे, झूठी बात है यह रूपक झूठा है, रह रह के वज्रबाण मेरे हृदय के मर्म्म को बेध रहे हैं। आओ, आओ, सखे, तुम्हारे शोकाकुल हृदय में आँसू बहावें ! जिससे बादल हट जाय।

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

काश्मीर-राजमहल-सामने राजपथ

द्वार पर शंकर

शंकर—जब नन्हासा था, मेरे गोद में खेला करता था। जब केवल चार दाँत निकले थे तब वह मुझे संकल दादा कहता था। अब बड़ा हो गया है, अब संकल दादा की गोद से काम नहीं चलता। अब राजसिंहासन चाहिये। स्वर्गीय महाराज मरती समय तुम दोनों भाई-बहिन को मेरी गोद में सौंप गये थे। बहिन तो दो दिन के बाद अपने पति के घर चली गई। सोचा था कि कुमारसेन को अपनी गोद से उठाकर सिंहासन पर ही बैठा दूंगा, परन्तु कुमार के चाचा महाराज

तो सिंहासन से उतरना ही नहीं चाहते। शुभ लग्न न जाने कितनी बार आई। परन्तु आज नहीं कल, करते करते न जाने कितना समय बीत गया। कितना बहाना, कितनी आपत्ति! अरे भाई संकलकी गोद और सिंहासन में बड़ा अन्तर है! बुड्ढा हो गया देखूँ तुझे राजगद्दी पर बैठाकर जा सकता हूँ या नहीं।

(दो सैनिकों का प्रवेश)

१—हमारे युवराज राजा कब होंगे भाई? उस दिन मैं तुम सबको महुआ खिलाऊँगा।

२—अरे तुम तो महुआ खिलाओगे—पर मैं तो अपनी जान दूँगा, मैं लड़ाई करता फिरूँगा-मैं बहुतसे गाँव लूट लाऊँगा। मैं अपने महाजनों का सिर फोड़ दूँगा। अगर कहो तो मैं खुशी से युवराज के सामने खड़ा खड़ा मर जाऊँ।

१—ऐसा क्या मैं नहीं कर सकता? अरे मरने की बात क्या कहता है। मेरी यदि सवासौ वर्ष की उम्र (आयु) हो तो मैं युवराज के लिये रोज़ नियमपूर्वक दोनों वक्त दो बार मर सकता हूँ। इसके सिवा घलुआ अलग है।

२—अरे युवराज तो हमारे हैं। स्वर्गीय महाराज तो उनको हमीं लोगों को सौंप गये हैं। हमलोग उनको कंधे पर चढ़ाकर ढोल बजाते हुए राजा बना देंगे। हम किसी से डरेंगे नहीं।

१—हम चाचा महाराज से कहेंगे, आप सिंहासन से उतर जाइए, हम लोग अपने राजकुमार को राजगद्दी पर बैठाकर आनन्द करना चाहते हैं।

२—तूने सुना, इसी पूर्णिमा को युवराज का विवाह है।

१—इस बात को तो पाँच वर्ष से सुन रहा हूँ।

२—इस बार पाँच वर्ष पूरा हो गया है। त्रिचूड़ के राज घराने की यह रीति चली आ रही है कि वरको राजकन्या के अधीन पाँच वर्ष तक रहना पड़ेगा। उसके बाद राजकन्या की आज्ञा होने पर व्याह होता है।

१—वाह भाई! यह भला किस काम की रीति है। हम लोग क्षत्रिय हैं। हम लोगों में सदासे यही चला आता है कि ससुर के मुँह पर तमाचा लगाकर, लड़की का झोंटा पकड़ कर उसे ले आना, दो घण्टों में सब साफ कर देना, जिससे और दस व्याह करने की फुरसत मिल जाय।

२—जोधमल, उस दिन भला तू क्या करेगा, बता तो सही?

१—उस दिन मैं भी एक व्याह कर डालूँगा।

२—शाबास।

१—मिहिरचन्द की लड़की देखने में बड़ी सुन्दर है। अहा! कैसी सुन्दर उसकी आँखें हैं। उस दिन वितस्ता (नदी) में पानी भरने जा रही थी। मैंने उससे दो चार बातें करनी चाहीं। झट वह कड़ा उतारकर मारने दौड़ी। देखा कि उस की आँखों से उसका कड़ा अधिक भयानक है। इसलिये चट वहाँ से खिसक गया।

गीत

(खम्माच झाब ताल)

तव नयनो की ही बलिहारी।
बार बार मत देखो, जाओ।
क्या करना कुछ इससे भारी?
हाथों में यह मेरा मन है।
निद्रा आती किसी न क्षण है।
आई अब प्राणों की बारी।
तव नयनो की ही बलिहारी॥

२—शाबास भैया, शाबास।

१—वह देख, शंकर दादा बैठे हैं। युवराज यहाँ नहीं हैं, तौ भी बुड्ढा सज-धजकर उसी द्वार पर बैठा है। पृथ्वी चाहे उलट जाये तौ भी इस बुड्ढे के नियम में त्रुटि नहीं हो सकती।

२—आओ भाई, उससे युवराज की दो चार बातें पूछें।

१—पूँछने से भला वह क्या जवाब देगा? भरत के राज्य में रामचन्द्र की खड़ाऊँ की तरह वह पड़ा रहता है। मुँह से बोलता भी नहीं।

२—(शंकर के पास जाकर) हाँ दादा, बताओ न दादा, युवराज राजा कब होंगे?

शंकर—तुम लोगों को इससे क्या मतलब है?

१—नहीं, नहीं, मैं कहता हूँ, हमलोगों के युवराज अब सयाने हुए, पर तौभी चाचा महाराज गद्दी से उतरते क्यों नहीं?

शंकर—इसमें दोष ही क्या है? लाख हो, पर वह युवराज के चाचा तो हैं न?

२—हाँ, यह तो ठीक है। परन्तु जिस देशका जैसा नियम। हमारे यहाँ का नियम है कि—

शंकर—नियम हम मान सकते हैं। तुम मान सकते हो। पर बड़े लोगों के लिये नियम कैसा? सभी लोग अगर नियम मानेंगे तब नियम बनावेगा कौन?

१—अच्छा दादा उसे जाने दो—पर पाँच वर्ष तक ठहर कर व्याह करना, यह कैसा नियम है। मैं तो कहता हूँ व्याह करना बाण लगने के समान है-बाण लगा और जन्मभर के लिये विध गया, फिर उसका कुछ सोच नहीं रहता। परन्तु दादा, पाँच बर्ष तक ठहरना, यह अचरज तो कुछ समझ में नहीं आता।

शंकर—तुम लोगों को अचरज होगा, इसलिये किसी देश का जो नियम है वह तो नहीं बदल सकता ? नियम तो कोई छोड़ नहीं सकता। संसार नियम से ही तो चल रहा है। जाओ जाओ, अधिक बको मत। यह सब बातें तुमलोगों के मुँह से अच्छी नहीं लगतीं।

१—जाता हूँ, भाई आज कल हमारे शंकर दादा का मिजाज़ अच्छा नहीं है। बिलकुल सूखकर पत्ते की तरह खड़खड़ कर रहा है।

(प्रस्थान)

(पुरुष बेष में सुमित्रा का प्रवेश)

सुमित्रा—तुम क्या शंकर दादा हो ?

शंकर—कौन हो तुम ? पुराने परिचित स्नेहमय स्वर से पुकारनेवाले तुम कौन हो ? पथिक कहो, तुम कौन हो ?

सुमित्रा—मैं परदेश से आया हूँ।

शंकर—यह क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? क्या किसी मंत्र-बल द्वारा कुमार फिर बालक होकर शंकर के पास आया है ? ऐसा जान पड़ता है कि वही सन्ध्या समय, वही सुकुमार कुमार जिसके चरण-कमल कुम्हला गये हैं, देह क्लान्त हो गई है, खेल से थककर शंकर की गोद में बिश्राम माँग रहा है।

सुमित्रा—जालन्धर से मैं कुछ समाचार लेकर कुमार के पास आया हूँ।

शंकर—कुमार की बाल्यावस्था क्या आप ही कुमार के पास आयी है ? लड़कपन के खेलों की याद दिलाने के लिये क्या उसे छोटी बहन ने भेजा है ? हे दूत, तुमने यह स्वरूप कहाँ

पाया ? व्यर्थ मैं कितना बक गया। मुझे क्षमा करो। बताओ, बताओ क्या समाचार है, मेरी रानी बहिन अच्छी है ? पति के सुहाग और रानी का गौरव पाकर सुखी है ? प्रजा सुखी होकर उसे माता कहकर आशीर्वाद देती है ? राजलक्ष्मी-अन्नपूर्णा उसके राज्य में कल्याण तो कर रही हैं ?

आह ! मैं कैसा हूँ तुम राह चलते-चलते थक गये हो, चलो मेरे घर चलो। विश्राम के उपरान्त धीरे-धीरे सब समाचार कहना।

सुमित्रा—शंकर क्या अब तक तुम्हारे मन में रानी की याद बनी है ?

शंकर—वही कण्ठ-स्वर है ! वही स्नेह के भार से झुकी हुई कोमल दृष्टि है ! यह कैसा छल है ! दूत, क्या तुम मेरी सुमित्रा की छाया चुरा लाये हो। मैं उसे भूल गया हूँ, क्या यही सोचकर उसकी अतीत स्मृति मेरे हृदय से निकल कर मुझे छलने आई है ? युवा ! इस बूढ़े की मुखरता क्षमा करो। बहुत दिनों से मौन था, इसीसे न जाने कितनी बातें मुँह से निकल रही हैं। आँखों में आँसू भरे आते हैं। न जाने क्यों इतना स्नेह मेरे मन में तुम्हारे लिये उत्पन्न हो रहा है। मानो तुम मेरे चिर-परिचित हो। मानो तुम मेरे जीवन-धन हो।

(प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

त्रिचूड़-क्रीड़ा-कानन

कुमारसेन, इला और सखियाँ

इला—युवराज! आप जाना चाहते हैं। क्यों जाना चाहते हैं। क्या इला दो घड़ी से अधिक अच्छी नहीं लगती? छिः पुरुषों का हृदय इतना चञ्चल होता है!

कुमार--सब प्रजा।

इला--सब प्रजा क्या तुम्हें बिना देखे मुझसे अधिक व्याकुल होती है? जब तुम अपने राज में चले जाते हो, उस समय जान पड़ता है कि मैं इस संसार में अब नहीं हूँ। जब तक मुझे याद करते हो मैं तभी तक समझती हूँ कि मैं इस संसार में हूँ, अकेली मैं कुछ भी नहीं हूँ। तुम्हारे राज्य में न जाने कितने मनुष्य होंगे, न जाने कितनी चिन्ताएँ तुम्हें रहती होंगी और न जाने कामों की कितनी भीड़ तुम्हें रहती होगी, वहाँ सब कुछ है परन्तु यह क्षुद्र इला वहाँ नहीं है।

कुमार—वहाँ सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। परन्तु प्रिये, तुम न होने पर भी मेरे हृदय में रहती हो।

इला—झूठी बातें बनाकर कुमार, मुझे न फुसलाओ। तुम अपने राज्य के राजा हो परन्तु इस वन की मैं रानी हूँ, तुम मेरी प्रजा हो। कहाँ जाओगे? मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी। सखियाँ आओ इन्हें फूल-पाश में बांध लो और गीत गाकर राज की चिन्ता छीन लो।

सखियों का गाना

(मिश्रमल्लार-एकताला)

प्रेमी आकर फिर क्यों जाता ? दर्शन दे क्यों रूप छिपाता ॥
प्रिया सुमन को सदा निरखती। व्याकुल चित हो प्रेम परखती ॥
वायु-वेग में उड़ना भाता। प्रेमी आकर फिर क्यों जाता ?
पकड़ो उसे, न भगने पावे। पिंजड़े में ही दिवस बितावे ॥
सुख-पत्ती भुलवा उड़ जाता। प्रेमी आकर फिर क्यों जाता ?
सुखदा रात पथिक बन आती। हँसकर के यह हमें सिखाती–
जाग, जाग, मैं तुझे मिलूँगी ! वर्षों का श्रम क्षण में जाता ॥
प्रेमी आकर फिर क्यों जाता ?

कुमार—प्रिये, तूने मुझे क्या कर दिया ! मेरा समस्त जीवन, मन, नयन और वचन केवल वासनामय होकर तेरी ओर दौड़ रहा है। मानों मैं अपने को मिटाकर तेरे देह में व्याप्त हो जाऊँगा, सुखस्वप्न होकर तेरे इन नयनपल्लव में मिल जाऊँगा, हास-विलास होकर तेरे अधर में शोभित होऊँगा, तेरी दोनों वाहों में ललित लावण्य की तरह लिपटा रहूँगा, इष्ट-मिलन सुख की तरह तेरे कोमल हृदय में लीन हो जाऊँगा।

इला—उसके उपरान्त अन्त में प्रियतम तुम्हारा वह स्वप्न-जाल सहसा टूट जायगा, अपना स्मरण आतेही तुम चले जाओगे और मैं टूटी वीणा की तरह भूमि पर पड़ी रहूँगी। नहीं नहीं, सखे, यह स्वप्न नहीं है, यह मोह नहीं है, यह मिलन-पाश कभी न कभी वाहु से वाहु को, आँखों से आँखों को, हृदय से हृदय को और जीवन से जीवन को अवश्य बाँध देगा।

कुमार—इसमें तो अब देरी नहीं है। आज सप्तमी का अर्द्ध-

चन्द्र धीरे-धीरे पूर्ण चन्द्र होकर हमलोगों का वह पूर्ण मिलन देखेगा। कम्पित अनुराग से भरे हुए मिलन-सुख के बीच क्षीण विरह की बाधा का आज अन्त है। दूर रहने पर भी यह जान पड़ना कि हम दोनों अति निकट हैं, और समीप रहने पर भी यह जान पड़ना कि हम अत्यन्त दूर हैं, इसका आज अन्त है। अचानक भेंट होना, चकित होना, सहसा मिलना और विरह की पीड़ा का आज अन्त है। वन-मार्ग से धीरे-धीरे सूने घर की ओर लौटते समय हृदय में सुख-स्मृति का उदय होना, मन में प्रत्येक बातों की सैकड़ों बार याद आना, इन सब बातों का आज अन्त है। हरबार प्रथम मिलन के समय लज्जित होकर मौन हो जाने का, विदाई के समय प्रतिबार आँखों से आँसू गिरने का आज अन्त है।

इला—अहा! ऐसाही हो! सुख की छाया से सुख अच्छा है, पर यदि दुःख हो तो वह भी अच्छा है। मृगतृष्णा से तृष्णा अच्छी। कभी मैं सोचती हूँ कि मैं तुमको पाऊँगी, कभी सन्देह होता है कि तुम्हें मैं न पाऊँगी, और कभी सन्देह होता है कि मैं तुम्हें खो दूँगी। कमी अकेली बैठी बैठी सोचती हूँ कि तुम कहाँ हो, क्या कर रहे हो, मेरी कल्पना वन-प्रान्त से विकल होकर लौट आती है, वन के बाहर का मार्ग मैं नहीं जानती, इससे तुम्हें खोज नहीं सकती। अब मैं तुम्हारे साथ सर्वदा समस्त भुवन में रहूँगी, कोई स्थान अपरिचित नहीं रहेगा। अच्छा बताओ, प्रियतम! क्या म तुम्हें कभी वश न कर सकूंगी?

कुमार—मैं तो अपनी इच्छा से तुम्हारे वश हो गया हूँ। प्रिये, फिर मुझे क्यों बाँधना चाहती हो? भला बताओ तो तुमने क्या नहीं पाया है, किसका तुम्हें अभाव है?

इला—जब मैं तुम से सुमित्रा की बातें सुनती हूँ, उस समय मेरे हृदय में व्यथा होती है। ऐसा जान पड़ता है कि उसने मुझे छलकर तुम्हारा शैशव अपने पास चुराकर छिपा रखा है। कभी जान पड़ता है कि यदि वह तुम्हारी बाल्यसहचरी लौटकर तुम्हें वही लड़कपन के खेलघर में बुला ले जाय, तो वहाँ तुम उसी के हो जाओगे, वहाँ मेरा अधिकार नहीं है। कभी कभी मुझे तुम्हारी सुमित्रा को एक बार देखने की बड़ी चाह होती है।

कुमार—अहा, यदि वह आती तो कितना सुख होता! आनन्दोत्सव के प्रकाश की भाँति अपने पितृभवन और शैशव-गृह को प्रकाशित करती। वह तुम्हें गहनो से सजाती, आदर से तुम्हें अपने गले लगाती, फिर छिपकर हँसती हुई हम दोनों का मिलन देखती। परन्तु अब क्या भला वह हमलोगों को याद करती होगी? पराये घर जाकर वह पराई हो गई।

इला का गाना

आप पराए बनते हैं, दुख दूर गैर का करते हैं।
अपना उन्हें बनाते हैं, और आप मुसीबत सहते हैं॥
वंशी की तान जब सुनते हैं, घर छोड़ भाग कर चलते हैं।
मरते हैं या जीते हैं पर प्यार गैर को करते हैं॥
मौत भी गर आ जाती है, तो फ़िर नहीं ये डरते हैं।
अपना आप भुलाते हैं और हरदम हँसते रहते हैं॥

कुमार—यह करुणा से भरा हुआ स्वर क्यों सुनाई पड़ता है ? यह दुःख से भरी हुई गीत क्यों गाती हो ? आँखें उदास क्यों हो गईं ?

इला—प्रियतम ! यह दुःख की गीत नहीं है। गहरा सुख दुःख की तरह उदास जान पड़ता है। दुःख सुख का विचार त्यागकर स्त्रियों के लिये आत्म-विसर्जन करना ही परम सुख है।

कुमार—तुम्हारे इस प्रेम से मैं इस पृथ्वी को भी वश कर सकूँगा। आनन्द-विह्वल होकर मेरा जीवन विश्व में उथल रहा है। श्रान्तिहीन कर्म सुख के लिये मेरा हृदय दौड़ रहा है। चिरस्थायी कीर्त्ति प्राप्त करके मैं तुमको उसकी अधिष्ठात्री देवी बनाऊँगा। अकेले विलास में बैठकर तुम्हारे इस अगाध प्रेम को आलसियों की तरह मैं भोग नहीं सकता।

इला—प्रियतम ! देखो ढेर के ढेर बादल उस उपत्यका से उठकर उस पहाड़ की चोटी को घेर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि सृष्टि का यह विचित्र लेख यह मिटा देंगे।

कुमार—प्रिये, दक्षिण की ओर देखो। अस्त होते हुए सूर्य की किरणों से सुवर्ण-समुद्र की तरह समतल भूमि मानो किसी लापता विश्व की ओर चली जा रही है। अन्नक्षेत्र, वनश्रेणी, नदी, ग्राम सभी अस्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—जान पड़ता है कि मानो सोने के चित्र-पटपर केवल नाना प्रकार के रंग भरे गये हैं, पर चित्ररेखायें अभी नहीं फूटी हैं। मानो मेरी आकांक्षा पहाड़ की ओर से पृथ्वी की ओर फैलती हुई अपने हृदय में कल्पना की स्वर्ण-लिखित फोटो लिये हुई चली जा रही है। अहा, वहाँ न जाने कितने देश, कितने नवीन दृश्य, कितनी नई कीर्त्ति और कितनी नयी रंगभूमि होगी।

इला—अनन्त की मूर्त्ति धारण करके वह मेघ हमलोगों को ग्रासने के लिये आ रहे हैं ! नाथ, निकट आओ ! अहा, यदि सदा हम दोनों दो पक्षियों की तरह इस मेघरूपी घोसले में रहते तो कैसा अच्छा होता ! प्रियतम, क्या तुम वहाँ रह सकते ? मेघ का आवरण हटाकर पृथ्वी का आह्वान तुम्हारे कानों में ज्योंहीं पहुँचता, तुम मुझे अकेली छोड़कर दौड़ जाते और मैं प्रलय के बीचमें पड़ी रहती।

(परिचारिका का प्रवेश)

परि०—जालन्धर से एक दूत कोई गुप्त समाचार ले कर काश्मीर में आया है।

कुमार—तब जाता हूँ प्रिये, फिर आऊँगा, पूर्णिमा की रात को आकर अपने हृदय की चिरपूर्णिमा को ले जाऊँगा। इस समय तुम मेरी हृदय देवी हो, उस दिन गृह-लक्ष्मी होगी।

इला—जाओ नाथ ! मैं अकेली तुम्हें कैसे रख सकती हूँ। हाय, मैं कितनी क्षुद्र हूँ ! यह संसार कितना विशाल है, और तुम्हारा हृदय कैसा चंचल है। मेरे विरह को कौन समझेगा ? मेरे आँसुओं की बूंदों को कौन गिनेगा ? इस निर्ज्जन वन-प्रान्त में कातर-हृदया बालिका की मर्म्मवेदना का कौन अनुभव करेगा ?
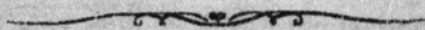
तृतीय दृश्य

काश्मीर-युवराज का महल

कुमारसेन और छद्मवेश में सुमित्रा

कुमार—बहिन, मैं अपने हृदय का भाव तुम्हें कैसे दिखाऊँ? उन दुष्ट दस्युओं का दमन करने के लिये, काश्मीर के उन कलंकों को दूर करने के लिये मैं अभी सेना साथ लेकर चलना चाहता हूँ। एक क्षण भी मुझे युगसा जान पड़ता है। पर चाचाजी ने अभी तक आज्ञा नहीं दी। बहिन, इस छद्म-वेश को दूर करो, चलो, हम दोनों चलकर राजा के चरणों में गिरकर सब बातें कह दें।

सुमित्रा—भाई, यह कैसे हो सकता है? मैं तुम्हारे पास अपने मनका दुःख जताने आई हूँ। जालन्धर राज्य की रानी कुछ काश्मीर से भीख माँगने नहीं आई है! छद्म-वेश से मेरा हृदय जल रहा है। हा, मैं कैसी अभागी हूँ कि इतने दिनों बाद अपने को छिपाकर पिता के घर आई हूँ। वृद्ध शंकर को देखकर बार-बार मेरा गला आँसुओं से भर आया। इच्छा होती थी कि रोकर उससे कहूँ कि "शंकर, शंकर, देख तेरी वही सुमित्रा तुझे देखने के लिये आई है।" हाय वृद्ध, उस दिन तुमसे विदा होते समय कितना आँसू गिरा गई थी, किन्तु आज मिलती समय मिलन का अश्रुजल तुम्हें न दे सकी! भाई, आज मैं केवल काश्मीर की कन्या नहीं हूँ वरन् मैं जालन्धरकी रानी हूँ।

कुमार—बहिन, मैं समझ गया। जाकर कोई दूसरा उपाय करता हूँ।

चतुर्थ दृश्य

काश्मीर का महल-अन्तःपुर

रेवती और चन्द्रसेन

रेवती—जाने दो महाराज! बैठे बैठे क्या सोच रहे हो? इतना सोच करने का क्या काम? युद्ध में जाना चाहता है, जाने दो। उसके उपरान्त भगवान् करे वह युद्ध से लौटकर न आवे।

चन्द्र०—धीरे, रानी, धीरे!

रेवती—भूखी बिल्ली शिकार की ताक में बैठी थी, आज अवसर मिला है, क्या तो भी वह बैठी ही रहेगी?

चन्द्र०—चुप रहो रानी, कौन, कहाँ, किस के लिये बैठाथा!

रेवती—छीः छीः मुझसे छल करने से क्या होगा? मुझसे भला क्या छिपाओगे? यदि यह बात नहीं थी तो अब तक कुमार का व्याह क्यों नहीं किया? त्रिचूड़ राजा को ऐसी बेढंगी राय, कि पाँचवर्ष तक वर कन्या की आराधना करे, क्यों दी?

चन्द्र०—धिक्कार! चुप रहो, रानी, भला कोई किसी का अभिप्राय क्या समझ सकता है?

रेवती—तब भली भांति सोच लो, जो काम करना चाहते हो, सोच समझ कर करो। अपने ही निकट अपना उद्देश छिपा न रखो। देवता तुम्हारी ओर से आकर तुम्हारा काम नहीं कर जायगे। इसलिये मौका देखकर स्वयं उपाय करो। वासनाका उत्कट पाप मनमें संचित तो हो ही रहा है फिर उस परसे विफलता का कष्ट क्यों सहते हो? बस अब कुमार को युद्ध में भेज ही दो।

चन्द्र०—काश्मीर के उपद्रवी दूसरे के राज्य में अपना ज़हर उगल रहे हैं, क्या तुम उनको फिर अपने राज्य में बुलाना चाहती हो ?

रेवती—इन बातों को सोचने के लिये अभी बहुत समय पड़ा है। इस समय तो कुमार को युद्ध में भेज दो, पीछे देखा जायगा। प्रजा कुमार का राज्याभिषेक देखने के लिये व्यग्र है, उसको इसी बहाने कुछ दिन ठहरने का अवसर मिल जायगा। इस बीच में न जाने कौन कौनसी घटनायें हो सकती हैं, उस समय विचार कर लेना।

(कुमार का प्रवेश)

रेवती—(कुमार से) युद्धमें जाओ, देर न करो, चाचाजी ने आज्ञा देदी है। विवाहोत्सव फिर होगा। यौवन का तेज आलस्य में घर में बैठे हुए क्षय न करो।

कुमार—जय हो, जननी तुम्हारी जय हो। अहा यह कैसा सुखद समाचार है! अब चाचाजी, आप अपने मुख से भी मुझे आज्ञा दीजिये।

चन्द्र०—वत्स, जाओ, देखो सावधानी से रहना। दर्प के मद से जान-बूझकर विपत्ति में कूद न पड़ना। आशीर्वाद देता हूँ, "रण में विजयी होकर अक्षय शरीर से अपने पिता के राज्य में लौट आओ।"

कुमार—माता आप भी मुझे आशीर्वाद दीजिये।

रेवती—कोरी आशीर्वाद से क्या लाभ ? संसार में अपना बाहुबल ही अपनी रक्षा करता है।

विक्रम—तब चलो सेनापति, उसी के पास चलो। छोटी छोटी लड़ाइयों में यह क्षुद्र विजय और अस्त्रों की यह मृदु झनझनाहट मुझे अच्छी नहीं लगती है। मैं छाती से छाती में बाहों से बाहों में अति तीव्र प्रेम आलिंगन की तरह घोर संग्राम चाहता हूँ।

सेना—पता लगा था कि वह चुपचाप पीछे से आकर आक्रमण करेगा। परन्तु जान पड़ता है कि वह डर गया है और सन्धि-प्रस्ताव करने के लिये उत्सुक है।

विक्रम—धिक्कार है उस भीरु, कापुरुष को। मैं सन्धि नहीं, युद्ध चाहता हूँ, जिसमें रक्त से रक्त के मिलने का स्रोत बहता है और जहाँ शस्त्रों से शस्त्रों के मिलने का संगीत सुनाई पड़ता है। सेनापति, अब चलो।

सेना—जो आज्ञा महाराज। (प्रस्थान)

विक्रम—यह कैसी मुक्ति है। यह कैसा छुटकारा है। मेरे हृदय में आज कैसा आनन्द है। अबला की क्षीण बाहों से बँधा हुआ मैं कैसे प्रबल सुख से वंचित होकर पड़ा था। मेरा हृदय संकीर्ण अन्धकारमय गंभीर पथ को खोजता हुआ धीरे धीरे रसातल की ओर चला जारहा था। आज उससे मेरा छुटकोरा होगया। कैदी को छोड़कर शृंखला स्वयं हट गई। अबतक संसार में कर्म के प्रवाह में कितना युद्ध, कितनी सन्धि, कितनी कीर्त्ति, कितना आनन्द बह रहा था, पर मैं चम्पे की कली में सोये हुए कीड़े की तरह अन्तःपुर में बन्द पड़ा था। लोकलाज कहाँ थी, वीर पराक्रम कहाँ था, यह विपुल विश्व की रंगभूमि कहाँ थी? हृदय का पराक्रम कहाँ था? आज मुझे दीन कापुरुष, अन्तःपुर में रहनेवाला कौन कहेगा? त्रिविध समीर ने आज प्रबल आँधी का रूप धारण

किया है। उस तुच्छ प्रेम से यह प्रबल हिंसा अच्छी है। प्रलय तो विधाता का परम आनन्द है।

(सेनापति का प्रवेश)

सेना—विद्रोही सेना आरही है।

विक्रम--चलो, अब शीघ्र चलो।

(गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर--राजन्, विद्रोहियों की सेना निकट आगई है। पर न तो कोई बाजा है न निशान है और न कुछ युद्ध का कोलाहल है। इससे जान पड़ता है कि विद्रोही क्षमा माँगने के लिये आरहे हैं।

विक्रम—क्षमा की बात मैं नहीं सुनना चाहता । पहले मैं अपने अपयश को रक्त से धो डालना चाहता हूँ।

[द्वितीय चरका प्रवेश]

द्वितीयचर—शत्रुके शिविर से एक पालकी आरही है। मालूम होता है कि सन्धिका प्रस्ताव लेकर उसमें कोई दूत आ रहा है।

सेना—महाराज, क्षणभर ठहर जाइये, शत्रुका दूत क्या कहता है उसे तनिक सुन लिया जाय।

विक्रम—उसके उपरान्त युद्ध।

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—युधाजित और जयसेन को बन्दी करके उनको लिये हुए महारानी आई हैं।

विक्रम—कौन आया है?

सैनिक—महारानी।

विक्रम—महारानी! कौन महारानी?

सैनिक—हमलोगों की महारानी।

विक्रम—पागल, उन्मत्त ! जाओ, सेनापति, जाकर देख आओ कि कौन आया है।

(सेनापति इत्यादि का प्रस्थान)

महारानी आई हैं-युधाजित और जयसेन को कैद करके ! यह क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ! यह क्या रणक्षेत्र नहीं है ? यह क्या अन्तःपुर ही है ? अबतक क्या मैं युद्ध का स्वप्न देख रहा था ? अकस्मात् जाकर आज क्या मैं वही पुष्पवन, वही पुष्पशय्या और वही आलस्य से भरा हुआ दिन, निद्रा और जागरण से मिली हुई रात्रि देखूँगा ? कैद कर लाई है किसको ? मैं आज यह क्या सुन रहा हूँ ? महारानी क्या मुझे बन्दी करने आई है ?

[सेनापति का प्रवेश]

सेनापति—महारानी काश्मीर से सेना साथ लेकर अपने सहोदर भ्राता कुमार सेन के साथ आई हैं। राह में ही भागते हुए युधाजित और जयसेनको परास्त करके कैद कर लाई हैं। बाहर शिविरके द्वारपर आप से भेंट करने के लिये ठहरी हैं।

विक्रम-सेनापति भागो, भागो ! चलो चलो, सेना लेकर क्या और कहीं शत्रु नहीं हैं ? क्या और कोई विद्रोही नहीं है ! भेंट किसके साथ ? रमणी से भेंट करने का यह समय नहीं है।

सेना—महाराज।

विक्रम—चुप रहो सेनापति; जो मैं कहता हूँ उसे सुनो। द्वार बन्द कर दो, इस शिविर में पालकी आने की मनाही कर दो।

सेना—जो आज्ञा।

द्वितीय दृश्य

देवदत्त की कुटी

देवदत्त और नारायणी

देव—प्रिये, अब मुझे आज्ञा हो–यह दास बिदा हो ।

नारायणी—तो जाते क्यों नहीं, क्या मैं तुमको बाँध रखे हूँ ?

देव—बस, इसीसे तो कहीं मेरा जाना नहीं होता । विदा होने में भी सुख नहीं । अच्छा मैं जो कहता हूँ सो करो । वहीं, उसी जगह पछाड़ खाकर गिरपड़ो और कहो, हा हतोस्मि ! हा भगवती भवितव्यते ! हा भगवन् ! पंचशर !

नारा—व्यर्थ बक बक न करो । मेरी सौगन्ध, सच बताओ, कहाँ जाओगे ?

देव—राजा के पास।

नारा—राजा तो युद्ध करने गये हैं । क्या तुम भी युद्ध करोगे ? द्रोणाचार्य हो गये हो ?

देव—तुम्हारे रहते भला मैं युद्ध करूँगा ? जो हो अब मैं जाऊँगा ।

नारा—बार बार तो वही एक ही बात सुन रही हूँ, जाऊँगा जाऊँगा तो जाते क्यों नहीं ? किसने तुम्हें अपने सिरकी कसम देकर पकड़ रखा है ?

देव-हाय ! मकरकेतन, यहाँ तुम्हारे पुष्पशरसे कुछ काम नहीं होगा । भयंकर शक्ति-शेल छोड़े बिना मर्म्म स्थान तक नहीं पहुँचेगी । मैं कहता हूँ हे शिखरदशना, पक्व बिम्बाधरोष्ठी, आँखों से तुम्हारे कुछ आँसू वाँसू गिरेंगे या नहीं ? अगर गिरे तो उसे झटपट गिरा दो—मैं जाऊँ ।

नार—वोह रे अभाग्य! भला आँखों से आँसू किस दुःख से गिराऊँगी? पर हाँ जी, बिना तुम्हारे गये क्या राजा का युद्ध नहीं चल सकेगा? तुम क्या महावीर धूम्रलोचन होगये हो?

देव—मेरे बिना गये राजा का युद्ध नहीं रुकेगा। मंत्री बार बार लिख रहे हैं कि राज्य नष्ट हो रहा है परन्तु महाराज किसी प्रकार भी युद्ध छोड़ना नहीं चाहते। इधर विद्रोह भी बिलकुल थम गया है।

नारा—विद्रोह ही यदि थम गया तो महाराज किससे युद्ध करने जायँगे?

देव—महारानी के भाई कुमारसेन के साथ।

नारा—वाह, यह कैसी बात! साले के साथ युद्ध? क्या राजाओं में इसी प्रकार हँसी-ठट्ठा हुआ करता है। हमलोग होते तो सिर्फ कान मल देते। क्यों ठीक है न?

देव—यह सिर्फ हँसी-ठट्ठा नहीं है। महारानी कुमारसेन की सहायता से जयसेन और युधाजित को युद्ध में कैद करके महाराज के पास ले आईं। महाराज ने उनको अपने शिविर में प्रवेश करने से रोक दिया है।

नारा—हैं यहाँ तक! तो तुम अबतक गये क्यो नहीं? यह खबर सुनकर भी बैठे हो? जाओ, जाओ, अभी जाओ। हमारी ऐसी सती साध्वी रानी का अपमान! जान पड़ता है, राजा के शरीर में कलियुग ने प्रवेश किया है।

देव—विद्रोही कैदियों ने राजा से कहा है, महाराज, हम लोग आप ही की प्रजा हैं। यदि कुछ अपराध करें तो आप हम को सजा दें। परन्तु कोई परदेशी आकर हमारा अपमान करे तो इससे आप ही का अपमान होगा। लोग समझेंगे कि आप स्वयं अपने राज्य का शासन नहीं कर सकते। एक मामूली

युद्ध के लिये भी काश्मीरसे सेना आई, इससे बढ़कर उपहास और क्या हो सकता है ? इन बातों को सुनकर महाराजने मारे क्रोध के लाल होकर कुमारसेन के पास एक दूत भेजकर कुछ कड़ी कड़ी बातें कहला भेजीं। कुमारसेन भी उद्धत युवा पुरुष ठहरे, भला ऐसी बातें चुपचाप कैसे सह लेते ? जान पड़ता है कि उन्होंने भी दो चार कड़ी बातें दूत को सुनाई होंगी।

नारा—यह तो कोई बुरी बात नहीं है। बातें चल रही थीं चलने देते। राजा के पास तुम नहीं रहते तो क्या राजा को दो बातें भी नहीं सूझतीं ? बातें बन्द करके शस्त्र चलाने की क्या ज़रूरत ! इतने ही में तो राजा की हार हो गई।

देव—असल बात यह है कि राजा युद्ध करने का एक बहाना खोज रहे हैं। राजा अब किसी प्रकार भी युद्ध छोड़ना नहीं चाहते। अनेक प्रकार का बहाना ढूँढ रहे हैं। साहस करके राजा को अच्छी राय दे ऐसा कोई मित्र राजा के पास नहीं है। इसलिये अब मैं नहीं ठहर सकता, मैं जाता हूँ।

नारा—जाने का मन हो तो जाओ, पर देखो मैं अकेली तुम्हारी गृहस्थी न सम्हाल सकूँगी। यह मैं पहले ही से कहे देती हूँ। यह लो तुम्हारा सब काम पड़ा है। मैं बैरागिन होकर निकल जाऊँगी।

देव—ठहरो, पहले मैं लौट आऊँ, उसके बाद तुम जाना। कहो तो मैं न जाऊँ

नारा—नहीं नहीं, तुम जाओ। मैं क्या सचमुच तुमको रहने के लिये कहती हूँ। अजी, तुम्हारे चले जाने पर मैं मर न जाऊँगी, उसके लिये सोच न करो। मेरे दिन मजे में कट जायँगे।

देव—यह क्या मैं नहीं जानता। मलय समीर तुम्हारा

कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। विरह तो मामूली सी बात है, वज्र भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा।

(जाना चाहता है)

नारा—हे भगवन्; राजा को सुमति दो ! जिससे वह शीघ्र लौट आवें।

देव—इस घर को छोड़कर मैं कभी कहीं नहीं गया। इन लोगों की रक्षा करना प्रभो !

(प्रस्थान)

तृतीय-दृश्य

जालन्धर-कुमारसेन का शिविर

कुमारसेन और सुमित्रा

सुमित्रा—भैया, राजा को क्षमा करो; यदि क्रोध करना हो तो मेरे ऊपर कर लो। यदि मैं बीच में न होती तो तुम युद्ध करके अपना वीर नाम सार्थक करते। युद्ध की ललकार सुन कर भी तुम मेरे कारण अचल रहे। मैं जानती हूँ कि अपमान रूपी बाण मृत्युपर्यन्त मानियों के हृदय को व्यथित करता है। हा ! मैं कैसी हत-भागिनी हूँ कि अपने भाई के हृदय में ऐसा भयंकर अपमान-शर बिधते हुए देख रही हूँ। भाई, इससे तो मृत्यु ही अच्छी थी।

कुमार—बहिन, तुम तो जानती हो कि युद्ध करना वीरों का धर्म्म है, परन्तु क्षमा करनो उससे कहीं बढ़कर वीरता है। भला महत् जनों के सिवा अपमान को कौन सह सकता है ?

सुमित्रा—धन्य हो, भाई, तुम धन्य हो; यह जीवन में

तुम्हारे लिये अर्पण करती हू , परन्तु तुम्हारा यह स्नेह-ऋण परिशोध में प्राण देकर भी नहीं कर सकती। भाई, तुम वीर हो, तुम उदार हो और तुम्हीं नर-समाज के सच्चे नरपति हो।

कुमार—मैं तेरा भाई हूँ! चल बहिन, अपने उसी तुषार शिखर से घिरे हुए शुभ्र सुशीतल आनन्दकानन के शैलगृह में चल। उस उच्च शिखर पर जहां हम दोनों भाई बहिन बचपन में खेलते कूदते थे, तू क्या फिर न चलेगी?

सुमित्रा—चलो, भाई, चलो। जिस घर में हम दोनों भाई बहिन खेला करते थे; उसी घर में तुम अपनी प्रेयसी को ले आओ। सन्ध्या समय वहीं बैठ कर उसको तुम्हारे मन माफिक सजाऊँगी। उसको सिखा दूँगी कि तुमको कौन कौन सा फूल, कौन कौन सी गीत, और कौन कौन सा काव्य अच्छा लगता है। तुम्हारे बाल्यावस्था की बातें, तुम्हारे लड़कपन का महत्व उसे सुनाऊँगी।

कुमार—लड़कपन की बातें मुझे आज भी याद आ रही हैं, हम दोनों वीणा बजाना सीखते थे। मैं जब घबड़ा कर भाग जाता था, तू अकेली सन्ध्या समय बैठी बैठी अपनी छोटी छोटी अँगुलियों से संगीत को अपने वश में किया करती थी।

सुमित्रा—मुझे भी याद है। खेल से लौट कर तुम मुझे अद्भुत कल्पित कहानियाँ सुनाते थे, कि अमुक नदी के तीर पर आज मैंने स्वर्गपुर देखा है, वहाँ कल्पवृक्ष के कुंज में अमृत का मधुर फल फलता है इत्यादि। मैं विस्मित होकर उन कहानियों को सुनती थी और रात को भी स्वप्न में उसी स्वर्ग पुरी को देखती थी।

कुमार—उन कल्पित कहानियों को कहते कहते मैं स्वयं

भूल जाता था। सच और झूठ एक साथ मेघ और पहाड़ की तरह एक में मिल जाते थे। कहते कहते मुझे वास्तव में पहाड़ी के उस पार स्वर्गपुरी दिखाई पड़ने लगती थी। बहिन, शंकर आ रहा है। देखें क्या समाचार लाया है।

[शंकर का प्रवेश]

शंकर—प्रभु मेरे राजा, इस वृद्ध शंकर को क्षमा करो? रानी बहिन मुझे क्षमा करो। मुझे तुमने दूत बनाकर वहाँ क्यों भेजा? मैं वृद्ध हूँ, बातें बनाकर बोलने में मैं चतुर नहीं हूँ। मैं क्या तुम्हारा अपमान सह सकता हूँ? शान्ति का प्रस्ताव सुनकर जिस समय ... जयसेन हँसने लगा, हँस हँसकर भृत्य युधाजित तीव्र उपहास करने लगा, भौंहें चढ़ा कर जालन्धर-राज विक्रम देव ने तुमको बालक और भीरु कहा, उस समय मुझे ऐसा जान पड़ा कि जितने सदस्य वहाँ बैठे हैं परस्पर एक दूसरे का मुख देखकर हँस रहे हैं। यहाँ तक कि जो लोग मेरे पीछे बैठे थे उनकी भी हँसी मानों सर्प की तरह मेरी पीठ में डसने लगी। उस समय मैंने तुमसे जितनी शान्ति-पूर्ण मधुर बातें सीखी थीं, भूल गया। क्रोध में भरकर मैंने कहा "तुम लोग कलह को वीरता समझते हो, इस कारण तुम लोग औरत हो, क्षत्रिय वीर नहीं हो। इसी कारण मेरे राजा कुमारसेन तलवार म्यान में रखकर अपने देश में लौटे जा रहे हैं।" मेरी इन बातों को सुनते ही जालन्धर पति क्रोध से कांप उठे। उनकी सेना युद्ध के लिये तैयार हो रही है।

सुमित्रा—भाई, क्षमा करो।

शंकर—क्या यही तुम्हारे लिये उचित है? तुम काश्मीर-तनया होकर क्या काश्मीर का अपमान समस्त भारत में

कराओगी ? वीर धर्म से अपने भाई को विमुख न करो, यही मेरी विनती है ।

सुमित्रा—बस करो, बस करो शंकर । भाई क्षमा करो ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, भाई, यदि तुम अपनी रोष की आग बुझाना चाहते हो तो लो मेरे हृदयरक्त से बुझालो । भाई, चुप क्यों हो ? बाल्यकाल से ही मैं ने बिना मांगे तुम्हारा स्नेह पाया है । आज मैं तुमसे भिक्षा माँगती हूँ ।

शंकर—सुनो, प्रभो !

कुमार—चुप रहो वृद्ध ! जाओ सेना से कह दो कि अभी काश्मीर की ओर तुरन्त लौटना होगा ।

शंकर—हाय ! इससे बढ़कर अपमान और क्या होगा ? संसार में लोग तुम्हें भीरु कापुरुष कहेंगे ।

सुमित्रा—शंकर, एकबार तू हम लोगों के बचपन की बात याद करके देख । छोटे छोटे दो भाई बहिन को तूने अपनी गोदमें स्नेह पाश से बाँध रखा था । क्या आज यश और अपयश तुझे उस स्नेह से अधिक जान पड़ता है ? सदा के लिये हृदय का यह सम्बन्ध पिता, माता, और विधाता के आशीर्वाद से घिरे हुए स्नेह तीर्थकी भांति पवित्र है । क्या इस पवित्र कल्याण-भूमि को बाहर से हिमाग्नि लाकर उसकी कारिख से मलिन किया चाहता है ?

शंकर—चलो बहिन, चलो उसी शान्ति क्षुधा से परिपूर्ण बाल्य-भूमि में लौट चलें ।

चतुर्थ दृश्य

विक्रम देव का शिविर

विक्रम, युधाजित और जयसेन

विक्रम—भागे हुए शत्रु पर आक्रमण करना क्षात्र धर्म नहीं है।

युधाजित—भागा हुआ अपराधी यदि सहज में ही छूट जाय तो फिर उसे दंड देने की आवश्यकता ही क्या है ?

विक्रम—यह बालक है, उसे यथेष्ट दण्ड मिल चुका। अपमानित होकर भागना-इसके बढ़कर और कौनसी सजा हो सकती है ?

युधा—पहाड़ों से घिरे हुए काश्मीर के बाहर उसका सब अपमान पड़ा रहेगा। वहाँ उसके कलंक की बात कौन जानेगा ? वहाँ तो सब लोग उसे युवराज ही समझेंगे।

जय—चलिये महाराज, उसी काश्मीर में चलकर हम अपराधी को दण्ड दे आवें और उसके राजसिंहासन में सदा के लिये कलंक की छाप लगा आवें।

विक्रम—तुम लोगों की यही इच्छा है, तो चलो। जितना सोचो उतनी हीं चिन्ता बढ़ती है, इसलिये इस समय मैंने अपने को कार्य-स्रोत में बहा दिया है। देखूँ, कहाँ तक बहकर जाता हूँ और कहाँ किनारा मिलता है।

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरे—महाराज, ब्राह्मणकुमार देवदत्त आप से मिलने आये हैं।

विक्रम--देवदत्त ! ले आओ, उसे ले आओ । नहीं नहीं, ठहरो । तनिक विचार लू कि ब्राह्मण किसलिये आया है ? उसको मैं भली प्रकार जानता हूँ, वह मुझे युद्ध से लौटाने के लिये आया है ? हाय ब्राह्मणों ! तुम्हीं लोगों ने मिलकर बांधको तोड़ दिया, अब वह प्रबल स्रोत क्या तुम्हारी आवश्यकता-नुसार सिर्फ खेतों को सींचकर, पालतू प्राणीकी तरह लौट जायगा ? नहीं नहीं, वह बस्तियों को बिना उजाड़े, गाँव और शहर के बिना नष्ट किये न छोड़ेगा । अब परामर्श और उपदेश तुम अपने पास रखो । मैं तो कार्य के वेग से अविश्राम गतिका सुख पाने के लिये उसी प्रकार दौड़ रहा हूँ । जैसे बढ़ी हुई महानदी पत्थरों की रुकावट को तोड़ कर बड़े वेग से बढ़ती है । प्रबल आनन्द अन्धा होता है, उसकी आयु क्षण भर की ही होती है, पर उतनी ही देर में वह अनन्त सुख को उसी प्रकार ले आता है जैसे मतवाला हाथी अपनी सूँड़ से कमल के फूल को । विचार और विवेक पीछे हुआ करेगा । जाओ, कह दो, इस समय मैं ब्राह्मण से मिलना नहीं चाहता ।

जय—जो आज्ञा ।

युधा—(अलग जयसेन से) ब्राह्मण को अपना शत्रु समझो और उसे कैद कर लो ।

जय—मैं उसे भली भांति जानता हूँ ।

पञ्चम अंक

प्रथम दृश्य

काश्मीर का राजमहल

रेवती और चन्द्रसेन

रेवती--लड़ाई की तैयारी! क्यों किस लिये ? शत्रु कहाँ है यह तो मित्र है! आदर के सहित उसे बुला लो। वह यदि काश्मीर पर अधिकार करना चाहे तो करने दो। राज्य की रक्षा के लिये आप इतने व्यग्र क्यों हैं? यह क्या आपका निजी राज्य है? पहिले उसे इस राज्य पर अधिकार कर लेने दो फिर मित्रता करके उससे यह राज्य लौटा लेना। तब यह पराया राज्य आप ही का हो जायगा।

चन्द्र—चुप रहो रानी, इस प्रकार बार बार न कहो। पहिले मैं अपना कर्तव्य पालन करूँगा फिर देखा जायगा जो भाग्य में लिखा होगा वही होगा।

रेवती—आप जो कुछ करना चाहते हैं, मैं उसे जानती हूँ। लड़ाई का बहाना करके आप हार मान लेना चाहते हैं। उसके उपरान्त चारो ओर बचाते हुए मौका देख कर चतुराई से अपना मतलब निकालना चाहते हैं।

चन्द्र—छिः छिः रानी, इन बातों को म जब तुम्हारे मुँह से सुनता हूँ तब स्वयं मुझे अपने ही ऊपर घृणा होती है। जान पड़ता है कि मैं वास्तव में ऐसा ही पाखण्डी और नीच

हूँ। मैं तुमसे विनती करके कहता कि मुझे कर्तव्यपथ से विचलित न करो।

रेवती--यदि आप अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहते हैं, तो मैं भी अपना कर्त्तव्य पालन करूँगी। गला घोंटकर अपने ही हाथों से अपने सन्तानों को मार डालूँगी। यदि आप उनको राजा नहीं बनाना चाहते तो संसार से पराधीन भिखारियों का वंश आपने क्यों बढ़ाया? दूसरे की सम्पत्ति की छाया में खाली हाथों घूमने से वन में चले जाना अथवा मर जाना कहीं अच्छा है। आप यह भली प्रकार से सोच लीजिये कि मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक दूसरे की हुकूमत नहीं सहेगा, मैंने जन्माया है, मैं ही राज्य दूँगी, नहीं तो मैं अपने ही हाथों से उसे मार डालूँगी। यदि मैं ऐसा न करूँगी तो वह मुझे कुमाता कह कर अभिशाप देगा।

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—युवराज राजधानी में आ गये हैं। महाराज का दर्शन करने के लिये वह शीघ्र ही आ रहे हैं।

(प्रस्थान)

रेवती—मैं आड़ में रहूँगी। आप उससे कह दीजिये कि अस्त्र-शस्त्र रखकर जालन्धर-पति के चरणों में अपराधी की तरह आत्मसमर्पण करे।

चन्द्र—तुम जाती क्यों हो, यहीं रहो।

रेवती—मैं अपने हृदय के भाव को छिपा नहीं सकती। बनावटी ममता दिखाना मेरे लिये असम्भव है। इसीसे छिपी रह कर तुम लोगों की बातें सुनूंगी।

(प्रस्थान)

[कुमार और सुमित्रा का प्रवेश]

कुमार—प्रणाम।

सुमित्रा—चाचाजी, प्रणाम।

चन्द्र—दीर्घजीवी हो, सुखी रहो।

कुमार—चाचाजी! मैंने बहुत पहिले ही यह समाचार भेजा था कि मेरे पीछे शत्रु सेना काश्मीर पर आक्रमण करने के लिये आ रही है। राजन्! युद्ध की तयारी कहां है? युद्ध के लिये सुसज्जित सेना कहां है?

चन्द्र—शत्रु? तुम शत्रु किसे कहते हो? क्या विक्रम शत्रु है? बेटी सुमित्रा, पुत्री! विक्रम क्या काश्मीर का जामाता नहीं है? वह यदि इतने दिनों पर काश्मीर आया है तो क्या उसको स्वागत तलवार से करना होगा?

सुमित्रा—चाचाजी, मुझ से आप कुछ न पूछिये। हा! मैं कैसी अभागी हूँ। अन्तःपुर छोड़ कर मैं बाहर क्यों आई? मैं नहीं जानती थी कि बाहर इतना उपद्रव छिपा है, जो अबला नारी के पैर रखते ही विषधर सर्प की तरह फन फैलाकर फुफकारने लगेगा। चाचाजी, मैं हतबुद्धि हूँ, मुझ से आप कुछ न पूछिये। (कुमार से) भाई, तुम सब कुछ जानते हो, तुम ज्ञानी और वीर हो। तुम्हीं बता सकते हो कि क्या करना चाहिये। मैं तो तुम्हारे पैरो की छाया हूँ। तुम संसार की गति जानते हो, पर मैं केवल तुम्हीं को जानती हूँ।

कुमार—महाराज, इसमें सन्देह नहीं, जालन्धरपति हमारे शत्रु नहीं वरं परम आत्मीय हैं। किन्तु इस समय वह काश्मीर के शत्रु हैं; काश्मीर पर आक्रमण करने के लिये वह शत्रु भाव से आ रहे हैं। अपने अपमान को मैंने सह लिया है, परन्तु राज्य पर आनेवाली विपत्ति की उपेक्षा मैं कैसे कर सकता हूँ?

चन्द्र—वत्स ! उसके लिये चिन्ता न करो, काश्मीर में इस समय यथेष्ट सेना मौजूद है, किसी बातका भय करना व्यर्थ है।

कुमार—उस सेना का भार आप मुझे दे दीजिये।

चन्द्र—देखा जायगा। पहिले ही से तैयारी करने से बिना कारण लड़ाई छिड़ जाती है। जब आवश्यकता होगी, तब सब सेना तुम्हें सब सौंप दी जायगी।

(रेवती का प्रवेश)

रेवती—सेना का भार कौन लेना चाहता है ?

सुमित्रा और कुमार—चाचीजी प्रणाम।

रेवती—रणभूमि से पीठ दिखा कर तुम भाग आये हो, तिस पर यहाँ आकर सैन्य-भार लेना चाहते हो ? क्या राजपूतों का यही काम है ? इसी साहस से तुम काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठना चाहते हो ? छिः छिः तुम्हें लज्जा नहीं आती ! अन्तःपुर में जाकर छिप रहो। तुम्हारे ऐसा कापुरुष यदि राजसिंहासन पर बैठेगा, तो लोग यही कहेंगे कि संसार के सर्वश्रेष्ठ राजमुकुट में कालिमा लग गई।

कुमार—माता, मने आप का ऐसा कौनसा अपराध किया है कि जिससे आप ऐसा कठोर वचन मुझे सुना रही हैं। न जाने क्यों आप इस अभागे पर बहुत दिनों से अप्रसन्न हैं। आप की क्रोध से भरी दृष्टि मेरे मर्म-स्थानों को सदा बेधा करती है। जब कभी मैं आप के पास आता हूँ आप मुँह फेर कर दूसरी जगह चली जाती हैं, विना अपराध कठोर बचन कहती हैं। माता बताओ, क्या करने से आप मुझ पर अपने ही पुत्र की भांति स्नेह करेंगी ?

रेवती—तब कह दूँ ?

चन्द्र—छिः छिः चुप रहो रानी।

कुमार—माता, अब अधिक कहने का समय नहीं है। शत्रु मेरे द्वार पर सेना सहित आक्रमण करने के लिये आ रहा है। इसी से म सेना का भार आप से भिक्षा की तरह माँग रहा हूँ।

रेवती—अपराधी की भाँति तुम्हें कैद करके जालन्धरपति के यहाँ भेज दूँगी। यदि वह तुम को क्षमा करें तो अच्छी बात है, नहीं तो जो कुछ दण्ड वह तुम को दें वह तुम्हें सिर झुका कर सहना होगा।

सुमित्रा—धिक्कार है! माता, चुप रहो। स्त्री होकर राज काज में हाथ न डालो, नहीं तो घोर अमंगल के जाल में सब को फँसा कर आप भी उसमें फँस जाओगी। दया और प्रेम से रहित सदा चलायमान इस कर्मचक्र से मुँह फेर लो। तुम केवल प्रेम करो, स्नेह करो दया करो और सेवा करो। दयामयी माता की तरह राजमहल में बैठकर अपने स्नेह से सब का दुःख दूर करो। माता! सन्धि-विग्रह आदि राज्यप्रबन्ध के जटिल कामों में हाथ डालना स्त्रियों का काम नहीं है।

कुमार—समय बीता जा रहा है, महाराज क्या आज्ञा है?

चन्द्र—कुमार! अभी तुम अनजान बच्चे हो, इसी से समझते हो कि सब काम इच्छा करते ही पल भर में पूरे हो जाते हैं। परन्तु याद रखो, राजकाज इतना सहज नहीं है। लाखों मनुष्यों के जीवन-मरण का प्रश्न भला क्षण भर में कैसे निश्चय किया जा रहा है।

कुमार—तात, इस प्रकार विलम्ब करना अत्यन्त निर्दयता है। मुझे विपत्ति के मुँह में छोड़े, चुपचाप सोच विचार करना

आप के लिये उचित नहीं है। यदि आप की ऐसी ही इच्छा है तो आपके चरणों में प्रणाम करके विदा होता हूँ।

(सुमित्रा और कुमार का प्रस्थान)

चन्द्र—तुम्हारी कठोर बातें सुन कर कुमार पर दया आती है। इच्छा होती है कि उसको बुलाकर हृदय से लगा लूँ और और प्रेम से उसके हृदय की दर्द दूर कर दूँ।

रेवती—महाराज, आप तो बच्चों की सी बातें करते हैं। आप समझते हैं कि स्नेह करने ही से कार्य सिद्ध हो जायगा। पुरुषों की तरह यदि आप काम करते होते तो मैं घर में बैठी बैठी दया और स्नेह करती रहती। पर अब तो इन बातों के लिये समय नहीं है।

(रेवती का प्रस्थान)

चन्द्र—जिस तरह बिगड़ा हुआ घोड़ा हवा की तरह दौड़ता हुआ रथ को पत्थर की दीवार से टकरा कर चूर चूर कर डालता है, उसी तरह मनुष्यों की बलवती आकाङ्क्षाएँ भी प्रवल वेग से चलती हैं और अन्त में स्वयं नष्ट हो जाती हैं।

द्वितीय दृश्य

काश्मीर का बाजार

भीड़

पहिला—क्यों जी चाचा, तुम ने गुदामों में जो गेहूँ इकट्ठे कर रखे थे उन्हें बेचने के लिये आज इतनी जल्दी क्यों कर रहे हो ?

दूसरा—बिना बेचे छुटकारा नहीं है। जालन्धर की फौज आ रही है। सब लूट लेगी और हमारे इन महाजनों के बड़े बड़े गुदामों को और भारी भारी तोंदको ऐसा फाँस देगी कि गेहूँ और रोटी दोनों ही के लिये जगह नहीं रहेगी।

महाजन—अच्छी बात है, खूब हँस लो। पर याद रखो, जूते सबके सिर पर पड़ेंगे। हँसने का मजा बहुत जल्दी मिल जायगा।

पहिला—इसी सुख से तो हँस रहा हूँ। इस बार हम और तुम एक साथ ही मरेंगे। तुम लोग गेहूँ बटोरकर रखते थे और हमलोग भूखे मरते थे, इस बार ऐसा नहीं होगा। इसबार तुम भी भूख से छटपटाओगे। उस समय तुम्हारे सूखे मुँह को देख कर हम लोग खुशी से मर सकेंगे।

दूसरा—हम लोगों को कौनसी चिन्ता है! हमलोगों के पास धरा ही क्या है! आख़िर ज़िन्दगी ऐसे भी बहुत दिन नहीं चलती, वैसे भी बहुत दिन नहीं चलेगी। इसलिये जबतक जीते हैं ज़रा हँस-बोल तो लें।

पहिला—क्यों जी जनार्दन, इतने बोरे क्यों लाये हो ? कुछ खरीदोगे क्या ?

जना०—साल भर के लिये गेहूँ खरीद कर रख दूँगा।

दूसरा—समझ लो कि खरीद लिया, पर रखोगे कहाँ?

जना०—आज ही रात को हम अपने मामा के यहाँ भाग जायँगे?

पहिला—पर मामा के घर तक तो पहुँचना ही कठिन है! राह में बहुत से मामा मिलेंगे जो बड़े आदर से तुम्हें बुला लेंगे।

[शोर करते हुए कुछ लोगों का प्रवेश]

पाँचवाँ—कौन है जी! क्या तुम लोग लड़ाई करना चाहते हो? लड़ना चाहते हो तो आओ।

पहिला—हाँ हाँ मैं राजी हूँ। बताओ, किसके साथ लड़ना होगा?

पाँचवाँ—चाचा महाराज (चन्द्रसेन) जालन्धर-पति के साथ मिलकर उनके हाथ हमारे युवराज को पकड़ा देना चाहते हैं।

दूसरा—हाँ तो चाचा महाराज के दाढ़ी में हमलोग आग लगा देंगे।

बहुत से—हम अपने युवराज की रक्षा करेंगे।

पाँचवाँ—चाचा महाराज चुपचाप युवराज को कैद करना चाहते थे। इसीसे हम लोगों ने उन्हें छिपा रखा है।

पहिला—चलो भाई, चाचा महाराज का चल कर हाँथ पैर तोड़ दें।

दूसरा—चलो भाई, उनका सिर काट कर उनको रुण्ड-मुण्ड कर दें।

पाँचवाँ—अरे, यह सब काम पीछे होगा, पहिले हम लोगों को युद्ध करना होगा।

पहिला—हाँ हाँ हम लड़ेंगे। इसी बाजार से ही लड़ाई

क्यों न शुरू कर दी जाय ? चलो पहिले इन महाजन लोगों के गेहूँ के बोरे हम लोग लूट लें, उसके बाद घी, चमड़ा, कपड़ा इत्यादि चीजों पर हाथ साफ करें ।

[छठे का प्रवेश]

छठवाँ—तुम लोगों ने सुना ! युवराज छिपे हैं, यह सुनकर जालन्धर के राजा ने ढिंढोरा पिटवा दिया है कि जो उनका पता बता देगा उसको इनाम मिलेगा ।

पाँचवाँ—तुझको इन खबरों से क्या काम ?

दूसरा—तू इनाम लेना चाहता है क्या ?

पहिला—आओ भाई सब लोग मिल कर इसको इनाम दें । चलो कोई न कोई काम तो शुरू कर दिया जाय । चुपचाप तो अब बैठा नहीं जाता ।

छठवाँ—भाई, मुझको मारो मत, दुहाई है तुम सब लोगों की ! मैं तो तुम्हें सावधान करने आया हूँ ।

दूसरा—बचा, तू खुद अपने को सावधान कर ।

पाँचवाँ—इस खबर को अगर तू फैलावेगा तो तेरी जीभ पकड़ कर खींच लूंगा ।

(दूर पर शोर)

बहुत से एक साथ—आ गई, आ गई !

सब—अरे आ गई रे, आ गई ! जालन्धर की सेना आ पहुँची ।

पहिला—तब फिर देर क्यों करते हो ! चलो लूट शुरू कर दें । वह देखो जनार्दन बोरा भर भर कर गेहूँ बैलों पर लाद रहा है । बस चलो इस जनार्दन के बैलों को गेहूँ सहित हाँक ले चलें ।
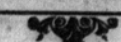
दूसरा—तुम लोग जाओ भाई। मैं तबतक तमाशा देख आऊ। पाँती बाँधकर नंगी तलवार हाथों में लिये जिस समय सेना आती है, उस समय मुझे उसे देखने में बड़ा मज़ा मिलता है।

गीत

स्वर्ग द्वार अब खुला पड़ा है, दौड़ो लड़को ज्वानो।
ऐसा अवसर हाथ न आवे, दौड़ो लड़को ज्वानो॥
आखिर एकदिन मरना, इस मरने से क्या डरना।
काम देश का करना है, अब दौड़ो लड़को ज्वानो॥
छोड़ो मन की शङ्का अब बजे चोट का डङ्का।
हो जाओ बहादुर बङ्का, तुम दौड़ो लड़को ज्वानो॥

तृतीय दृश्य

त्रिचूड़ राजमहल

अमरूराज और कुमारसेन

अमरू—भागो, भागो। यहाँ हमारे राज्य में न आओ! तुम खुद तो डूब ही रहे हो अपने साथ मुझे क्यों डुबाते हो। तुमको आश्रय दे कर मैं जालन्धर-पति के निकट अपराधी नहीं होना चाहता। यहाँ तुम्हारे लिये स्थान नहीं है।

कुमार—मैं आश्रय नहीं चाहता। अनिश्चित अदृष्ट-रूपी समुद्र में अपनी जीवन नौका को बहा दूँगा, परन्तु उसके पहिले सिर्फ एकबार इला को देख जाना चाहता हूँ। बस, मैं आप से यही भिक्षा माँगता हूँ।

अमरू—इला को देखना चाहते हो? क्यों, उसे देख कर तुम क्या करोगे? स्वार्थी मौत के मुँह में पड़े हो, सिर पर अपमान का बोझ लदा है। न तुम्हारा घर है न द्वार, न कहीं ठौर है, न ठिकाना। ऐसी हालत में भी इला के हृदय में प्रेम की पूर्व-स्मृति जगाने के लिये यहाँ क्यों आये हो?

कुमार—आर्य, यहाँ क्यों आया हूँ, हाय! यह आपको मैं कैसे समझाऊँ।

अमरू—विपद् के प्रबल स्रोत में तुम बह रहे हो, ऐसी अवस्था में तुम किनारे की कुसुमित सुकुमार लता को पकड़ना चाहते हो। जाओ, बह जाओ।

कुमार—मेरी यह विपत्ति केवल मेरी ही नहीं है। मेरे दुःख से वह भी दुःखी होगी। प्रेम केवल सम्पत्ति ही नहीं

चाहता। महाराज, एकबार दो घड़ी के लिये उससे मुझे बिदा माँग लेने दीजिये।

अमरू--जाओ, चले जाओ। उसको अवसर दो ताकि वह तुम्हें भूल जाय। उसका प्रसन्न मुख सदा के लिये मलीन न करो।

कुमार--वह यदि मुझे भूल सकती तो मैं उसको भूलने का अवसर देता। मैं उससे कह गया था कि फिर आकर तुम से शीघ्र मिलूँगा। मैं जानता हूँ इसी आशा और विश्वास से वह मेरी राह देखती होगी। उस सरला बालिका के अगाध विश्वास को मैं कैसे तोड़ दूँ।

अमरू--उस विश्वास का टूट जाना ही अच्छा है। नहीं तो वह अपने जीवन को नई राह पर न ले जा सकेगी। जीवन-पर्यन्त दुःख भोगने की अपेक्षा थोड़े दिनों का कष्ट अच्छा है।

कुमार--उसका सुख-दुःख आपने मुझे सौंप दिया है। उसे आप किसी भाँति भी लौटा न सकेंगे। आप उसके हृदय को नहीं जानते। आप जिसको उसका सुख-दुःख समझते हैं वास्तव में वह उसका सुख-दुःख नहीं है। महाराज! एक बार उसे मुझे दिखला दीजिये।

अमरू--मैंने उससे कह दिया है कि तुम हम लोगों को तुच्छ समझ कर केवल विवाह सम्बन्ध तोड़ने ही के लिये युद्ध का बहाना करके विदेश जा रहे हैं।

कुमार--धिक्कार है! ऐसी धोखेबाजी को धिक्कार है! उस सरला बालिका के तुम पिता होने के योग्य नहीं हो। यह कठोर झूठी बातें जिस समय तुमने उससे कही उस समय ईश्वर क्या सोच रहा था। हा! उसी समय तुम्हारे सिर पर वज्र क्यों नहीं गिर पड़ा! अब तक क्या वह जीवित है। मुझे जाने दो,